RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-03
March -2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

जैन दर्शन में मोक्ष का स्वरूप

डॉ० बीरेंद्र मणि त्रिपाठी

एसोसिएट प्रोफेसर प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, नेहरू ग्राम भारती मानित वि ०वि० इलाहाबाद।

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 15 March 2019

Keywords
कर्मजन्य, शीर्षस्थानापन्न, सिद्धलोक, परमशान्त अवस्था, मोक्षस्थान, निरतिशय, शिवरूप, क्षेमकर, क्षमोपशम, जन्म–जरा–मरण।

ABSTRACT

जैन–तत्व–मीमांसा के अनुसार संवर के द्वारा कर्मों के आगमन का निरोध हो जाने पर और निर्जरा के द्वारा समस्त पुरातन कर्मों का क्षय हो जाने पर आत्मा की जो निष्कर्म शुद्धावस्था होती है, वही मोक्ष है।[1] मोक्ष आत्मा की शुद्ध स्वरूपावस्था है। मोक्ष को जीवन का अन्तिम लक्ष्य मानने के कारण जैन–आचार्यों के मोक्ष तथा मोक्ष–मार्ग दोनों पर विस्तार से विचार किया है।

मोक्ष के लिए 'निर्वाण'[2] शब्द का प्रयोग जैन–आचार्यो ने भी किया है। निर्वाण का शाब्दिक अर्थ है–'निःशेषेण वानं गमनं निर्वाणम्' अर्थात् सम्पूर्ण रूप से गमन निर्वाण है। निर्वाण के बाद जीव का संसार में पुनरागमन नहीं होता। अतः यहां पर निर्वाण का अर्थ है कर्मजन्य सांसारिक अवस्थाओं का सदैव के लिए समाप्त हो जाना। जैन–मनीषियों ने 'मोक्ष' के स्वरूप का प्रतिपादन करने के साथ अन्य भारतीय दर्शनों में मान्य मोक्ष के स्वरूपों की समीक्षा करने के पश्चात निष्कर्षतः 10 स्वरूपों का वर्णन करते हैं[3]–

1. मोक्ष[4]–मोक्ष शब्द की उत्पत्ति मुच् धातु से हुई है जिसका अर्थ छुटकारा प्राप्त करना होता है। अध्यात्म विषय होने से यहां पर संसार के बन्धनभूत कर्मों से छुटकारा जीव को होता है एवं कर्मबन्धन से रहित जीव को मुक्त जीव कहा गया है। अतः मोक्ष का अर्थ हुआ सब प्रकार के बन्धन से रहित जीव द्वारा स्व स्वरूप की प्राप्ति।
2. बहिः विहार[5]–यहां पर विहार शब्द का अर्थ है जन्म–जरा–मरण से व्याप्त संसार। अतः बहिः विहार का अर्थ हुआ संसार के आवागमन से रहित स्थान या जन्म। मरणरूप संसार से बाहर। मोक्ष की प्राप्ति हो जाने के बाद जीव का संसार में आवागमन नहीं होता है, इस प्रक्रिया को उत्तराध्ययनसूत्र में बहिःविहार कहा गया है।
3. सिद्धलोक[6]–उत्तराध्ययन में निर्वाण अव्याबाध सिद्धि, लोकाग्र, क्षेम, जीव और अनाबाध इन नामों का उल्लेख मिलता है, परन्तु इन स्थान को पूर्ण रूप से संयम का पालन करने वाले महर्षि लोग ही प्राप्त करते हैं, क्योंकि यह स्थान सर्वोत्तम सर्वोच्च व सबके लिए कल्याणकारी हैं इसमें सभी प्रकार के कषायों से विरत होकर परमशान्त अवस्था को प्राप्त होने से इसको निर्वाण कहा गया है। लोक के अग्र–अन्त भाग में होने से इसको लोकाग्र नाम से ही पुकारते हैं, क्योंकि यहां से 'लोक' का प्रारम्भ भी होता है और यह लोक का प्रधान भाग होने से शीर्षस्थानापन्न भी हैं। मोक्ष को प्राप्त करने वाला जीव सिद्ध, बुद्ध एवं मुक्त होकर अपने अभीष्ट को प्राप्त कर सिद्धलोक को चला जाता है एवं सिद्धलोक सभी पापों के उपशमन होने से परमकल्याण रूप और सर्वोत्तम है।
4. आत्मवसति[7]–मुक्त होने का अर्थ है आत्मस्वरूप की प्राप्ति। अतः आत्मवसति या आत्म प्रयोजन की प्राप्ति का अर्थ है मोक्ष की प्राप्ति।
5. अनुत्तरगति, प्रधानगति, वरगति और सुगति[8]–धर्म में सामान्य रूप से चार गतियां मानी गयी हैं, जो संसार भ्रमण में कारण हैं। परंतु मोक्ष ऐसी गति है जिसे प्राप्त कर लेने पर पुनः संसार में आवागमन नहीं होता है। इससे श्रेष्ठ कोई गति नहीं है। अतः इसे अनुत्तरगति कहा गया है। यद्यपि देव और मनुष्यगति को उत्तराध्ययन सूत्र में सुगति भी कहा गया है, परंतु वह संसारपेक्षा से कहा गया है। वस्तुतः सुगति मोक्ष ही है। संसार की चार गतियों से भिन्न होने के कारण यह पंचमगति है।
6. ऊर्ध्व दिशा[9]–मुक्तात्मायें स्वभाव से ऊर्ध्वगमन स्वभावशाली है और जहां मुक्त जीव निवास करते हैं वह स्थान लोक के उपरी भाग में है। अतः मोक्ष को प्राप्ति का अर्थ है–ऊर्ध्व–दिशा में गमन।
7. दुरारोह[10]–निर्वाण प्राप्त करना अत्यन्त कठिन होने से इसे 'दुरारोह' कहा गया है। उत्तराध्ययनसूत्र में उल्लेख मिलता है कि लोक के अग्रभाग में एक ऐसा स्थान है जहां पर जरा व मृत्यु का अभाव है एवं किसी प्रकार की व्याधि व वेदना की भी वहां पर सत्ता नहीं एवं वह स्थान ध्रुव, निश्चल, अर्थात शाश्वत है, परंतु उस स्थान तक पहुंचना अतयन्त कठिन है। तात्पर्य यह है कि उस स्थान पर पहुंचने के लिए सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान व सम्यक

RRIJM 2015, All Rights Reserved

चरित्र ये तीन साधन हैं। इनके द्वारा ही वहां तक पहुंचा जा सकता है परन्तु इनका सम्यकत्या सम्पादन करना भी बहुत कठिन है।

8. अपुनरावृत व शाश्वत[11]–यहां आने के बाद जीव पुनः कभी भी संसार में नहीं आता है। अतः अपुनरावृत है एवं नित्य होने से शाश्वत भी है। तात्पर्य यह कि मोक्ष दशा को प्राप्त होने जाने पर न तो कोई शेष रहता और न किसी प्रकार के दुःख का उपभोग करना पड़ता है।
9. अव्याबाध[12]–इस प्रकार की बाधाओं से रहित व अत्यन्त सुखरूप होने से निर्वाण को अव्याबाध भी कहा गया है। तात्पर्य यह कि निजगुण का सुख एक अनुपम सुख होता है और सातावेदनीय कर्म के क्षयोपशम से जो सुख उत्पन्न होता है वह अनित्य, सादि, सान्त होता है, परन्तु इसके विपरीत जो आध्यात्मिक सुख है वह अजन्म होने से नित्य अथवा अनन्त पद वाला है।
10. लोकोत्तमोत्तम[13]–तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ होने से निर्वाण को लोकोत्तमोत्तम कहा गया है। मोक्ष स्थान में प्राप्त हुआ जीव फिर इस संसार में आकर जन्म मरण की परमपरा को प्राप्त नहीं होता अर्थात मोक्ष स्थान ध्रुव है। जो लोक मुक्तात्मा का पुनरागमन मानते हैं, वे भ्रान्त हैं, क्योंकि जब तक यह आत्मा आश्रवों से रहित नहीं होता, तब तक मोक्ष की प्राप्ति दुर्लभ ही नहीं, किंतु असम्भव है।

इस तरह यह निर्वाण की अवस्था रूप, जरा, व्याधि एवं भौतिक शरीर से रहित अत्यन्त दुःखाभावरूप, निरतिशय, सुखरूपी शान्त[14], क्षेमकर, शिवरूप, धनरूप, वृद्धि एवं ह्रास से रहित अविनश्वर, ज्ञानरूप, दर्शनरूप, पुनर्जन्म से रहित एवं एकान्त अधिष्ठान रूप है। मोक्ष का वर्णन उत्तराध्ययनसूत्र के 36वें अध्याय में है।

निष्कर्ष – मोक्ष की प्राप्ति के लिए श्रद्धा, ज्ञान और चारित्ररूप रत्नत्रय की आवश्यकता पड़ती है। चार्वाक दर्शन को छोड़कर अन्य जीवों को मुक्त की ओर ले जाना है। इस तरह उत्तराध्ययन में जो मुक्ति की अवस्था दर्शायी गयी है वह दिव्य अवस्था है, जहां न तो स्वामी सेवक भाव है और न कोई इच्छा इसे प्राप्त कर लेने पर जीव कभी भी संसार में नहीं आता। वह कर्म बन्धन से पूर्ण मुक्त हो जाता है। यह आत्मा के निर्लिप्त स्वरूप की स्थिति है। सब प्रकार के सांसारिक बन्धनों का हमेशा के लिए अभाव होने से इसे मुक्ति कहा गया है।

संदर्भ ग्रंथ –

1. उत्तराध्ययन, 23/71–73 व जैन, बौद्ध गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, भाग–1, पृ. 420
2. 'नायए परिनिव्वुए'
   'नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं' उत्तराध्ययनसूत्र,
   36/269 व जैन बौद्ध
   गीता के आचार–दर्शनों का तुलनातमक अध्ययन, भाग–1, 28/30
3. उत्तराध्ययनसूत्र : एक परिशीलन, पृ. 365–378
4. 'बन्धमोक्खपइणिणो' उत्तराध्ययनसूत्र 36/269
5. बहि विहारामिनिविट्ठचिता। उततराध्ययन 14/4
6. अलोए पडिहया सिद्धालोयग्गेय पइट्ठिया।
   निव्वाण ति अवाहं ति सिर्द्धा लोगग्गमेव य।
   खेमं सिवं अणावाहं ज चरिति महेसिणो।।
   अकलेवर सेणिमुस्सिया सिद्धिगोयमलोयं गच्छति।
   खेम च सिवं अणुत्तरं।
   उत्तराध्ययनसूत्र, 36/56
7. अप्पणो वसहिं वए।
   इह कामाणियदृस्य अन्तट्ठे अवरूझई
   उत्तराध्ययन, 14/48 एवं जैन, बौद्ध व गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन 7/25
8. पत्तो गइमणुत्तरं। वही, 18/38
   गइं व्हाणं च तिलोविस्सयुं। वही, 19/97
   जीवा गच्छन्ति सोग्गई। वही, 28/3
   सिद्धि वरगईं गया। वही, 36/67
   उडढं पक्कमई दिसं। वही, 19/82

RRIJM 2015, All Rights Reserved

उत्तराध्ययन, 23/81, 83

9. अपुणागमं गए
   सत्वगुणसम्पन्नयाएणं अपुणरावृत्ति जागयइ।
   उत्तराध्ययनसूत्र, 21/24
   जैन व बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, भाग–1, पृ. 86।
10. अणगारेणं जीव सारीर–
    माणसाणं दुक्ख्शाणं छेयणभेयण–संजो गाईण
    वोच्छेयं करेइ, अव्वाबाहं च सुहं निब्बेतइ।।
    उत्तराध्ययन, 29/4
11. लोगत्तमुत्तम ठाणं सिद्धि गच्छसिनीरओ।।
    उत्तराध्ययन, 9/58
12. अरुविणोजीवणा नाणदंसण सन्निया।
13. अउलं सुहं संपता उवमाजस्सनत्थि उ।।

RRIJM 2015, All Rights Reserved